चिकित्सा जगत को फिर जरूरत

डॉ. उपेन्द्रनाथ ब्रह्मचारी की

डॉ.कृष्ण कुमार मिश्र

डॉ. कृष्ण कुमार मिश्र ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से रसायन विज्ञान में पीएच-डी. की उपाधि प्राप्त की। आप टाटा मूलभूत अनुसंधान संस्थान, मुंबई के होमी भाभा विज्ञान शिक्षा केन्द्र में एसोशिएट प्रोफेसर हैं। लोकप्रिय विज्ञान लेखक के रूप में आपकी अपार ख्याति है जो कि हिन्दी में आपके व्यापक लेखन से निर्मित हुई है। आपके 300 से अधिक लेख तथा 24 पुस्तकें प्रकाशित हैं। के.एन. भाल नामित पुरस्कार, राजभाषा गौरव पुरस्कार, होमी जहाँगीर भाभा स्वर्ण पुरस्कार, विज्ञान परिषद् प्रयाग शताब्दी सम्मान, राजभाषा भूषण पुरस्कार सहित अनेक अलंकरणों से सम्मानित डॉ. मिश्र मुंबई में निवास करते हैं।

आज के इस दौर में जब समूची दुनिया कोरोना महामारी से त्रस्त है तथा यत्र, तत्र, सर्वत्र त्राहिमाम, त्राहिमाम की स्थिति है, पूरे विश्व की निगाहें सिर्फ और सिर्फ एक बात पर लगी हैं कि कोरोना का टीका कब तथा कौन विकसित कर लेता है। पूरी दुनिया में तमाम अनुसंधान प्रयोगशालाएँ तथा वैज्ञानिकों की टीमें दिन रात इस प्रयास में लगी हैं। अनेकानेक देशी-विदेशी कंपनियाँ इस कोशिश में जी-जान से अहर्निश जुटी हैं कि वे जितना जल्दी हो सके, कोरोना की वैक्सीन तैयार कर लें। आखिर यह संपूर्ण मानवता को इस महासंकट से उबार लेने का भगीरथ प्रयास है। क्योंकि यह एक मात्र वैक्सीन ही है जो हमें यह भरोसा दे सकती है कि यह रोग अब आगे हाहाकार नहीं मचा सकेगा, तथा इस बीमारी के दिन अब लदने वाले हैं। टीके के इंतजार का एक-एक दिन अब दूभर लगने लगा है। लेकिन जैसा कि हम जानते हैं, किसी टीका का विकास एक लम्बी तथा श्रमसाध्य प्रक्रिया होती है। वैक्सीन के विकास के इतिहास पर नज़र डालें तो पाएंगे कि ज्यादातर टीके प्रायः 10 से 15 साल के अथक प्रयास से बन सके हैं। लेकिन वर्तमान हालात में इंसान के लिए बरसों के इंतजार की बात ही डरावनी तथा बेमानी लगती है जहाँ एक-एक दिन की प्रतीक्षा अब बिलकुल बोझिल हो चली है।

कोरोना महामारी के इस वैश्विक संकट में महान भारतीय चिकित्सक तथा आविष्कारक, डॉ. उपेन्द्रनाथ ब्रह्मचारी का नाम सहज स्मरण हो आता है जिन्होंने कालाजार नामक भयंकर बीमारी का इलाज खोजा था। वे उस दौर में लाखों-लाख संक्रमितों के लिए मसीहा की भूमिका में सामने आए थे। उनका चिकित्सकीय योगदान इतिहास के पन्नों में स्वर्णाक्षरों में दर्ज है। उनके द्वारा तैयार किए गए कार्बनिक एन्टीमोनिल यौगिक 'यूरिया स्टिबामीन' (Urea stibamine) की खोज ने कालाजार बीमारी के उपचार और लडाई में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। इस खोज से लाखों मरीजों की जान बचायी जा सकी। ब्रह्मचारी ने अपनी खोज का पेटेन्ट नहीं कराया। उनका मानना था कि चिकित्सकीय खोज मानव सेवा के लिए है, धन कमाने के लिए नहीं। वे चाहते तो यूरिया स्टिबामीन का पेटेन्ट कराके उस समय लाखों रुपये कमा सकते थे। डॉ. ब्रह्मचारी ने कालाजार के साथ-साथ सेरिब्रोस्पाइनल मेनिन्जाइटिस, मेलेरिया, फाइलेरियासिस, कुष्ठरोग, सिफिलिस जैसे रोगों पर भी महत्वपूर्ण शोध कार्य किया। लेकिन उन्हें दुनिया भर में सर्वाधिक प्रसिद्धि कालाजार का इलाज ढूँढ़ने के लिए मिली। वास्तव में कालाजार तथा डॉ.यू.एन. ब्रह्मचारी, ये दोनों नाम एक दूसरे के पर्याय हैं। एक शिक्षक और शिक्षाविद् के रूप में उनका काम उच्च कोटि का था। तत्कालीन ब्रिटिश सरकार ने डॉ. ब्रह्मचारी के काम को बहुत महत्व दिया।

उनके कार्य की महत्ता इस बात से जाहिर होती है कि सन् 1929 में जहाँ सर सी.वी.रामन को भौतिकी के नोबेल पुरस्कार के लिए नामित किया गया था तो डॉ. ब्रह्मचारी को चिकित्सा विज्ञान के लिए नामित किया गया था। यद्यपि उस वर्ष इनमें से किसी को यह पुरस्कार नहीं मिल सका। लेकिन अगले वर्ष 1930 में सी.वी. रामन को पुनः नामित किया गया तथा उन्हें नोबेल पुरस्कार मिला गया। डॉ. ब्रह्मचारी को सन 1942 में पाँच अलग-अलग व्यक्तियों द्वारा नोबेल पुरस्कार के लिए पुनः नामित किया गया लेकिन द्वितीय विश्वयुद्ध की उथल-पुथल के चलते नोबेल पुरस्कारों की प्रक्रिया पूरी न की जा सकी। वास्तव में वर्ष 1942 में स्वीडन स्थित नोबेल समिति ने किसी भी विधा के लिए किसी को भी पुरस्कृत नहीं किया। इस तरह एक महान भारतीय शोधकर्ता इस सम्मान से वंचित हो गया। विशुद्ध अर्थों में सी.वी. रामन के बाद डॉ. ब्रह्मचारी दूसरे भारतीय वैज्ञानिक होते

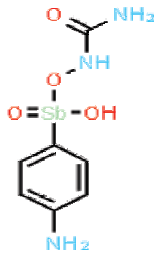

जिन्हें विज्ञान के लिए नोबेल पुरस्कार मिला होता। जैसा कि हम जानते हैं, रामन ही सही अर्थों में एकमात्र भारतीय हैं जिन्हें नोबेल सम्मान प्राप्त हुआ। अन्य सभी लोग केवल भारतीय मूल के थे, लेकिन वे कभी के विदेशी नागरिक बन चुके थे।

डॉ. ब्रह्मचारी का जन्म बंगाल के बर्दवान जिले में हुआ था। उनके पिता का नाम डॉ. नीलमणि ब्रह्मचारी तथा माता का नाम श्रीमती सौरवसुंदरी देवी था। उनके पिता पेशे से चिकित्सक थे और जमालपुर में भारतीय रेलवे में काम करते थे। एक चिकित्सक के रूप में वह बहुत सफल थे। रेलवे की सेवाओं से सेवानिवृत्ति के बाद डॉ. नीलमणि जमालपुर के नगर आयुक्त और मानद न्यायाधीश बन गये। ब्रह्मचारी ने जमालपुर के रेलवे बॉयज़ हाईस्कूल में अपनी प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त की। सन् 1893 में उन्होंने गणित और रसायन विज्ञान में ऑनर्स के साथ बी.ए. पास किया। उन दिनों किसी छात्र के लिए दो विषयों में ऑनर्स करना संभव था। ब्रह्मचारी ने अपने बी.ए. की परीक्षा में गणित की मेरिट लिस्ट में प्रथम स्थान पाया। तदोपरान्त चिकित्सा और रसायन विज्ञान के अध्ययन के लिए कलकत्ता मेडिकल कॉलेज और वहाँ के प्रेसीडेंसी कॉलेज में दाखिला लेने का फैसला किया। उन्होंने 1894 में प्रेसीडेंसी कॉलेज से रसायन विज्ञान में प्रथम श्रेणी के साथ अपनी एम.ए. की डिग्री ली। सर अलेक्जेंडर पेडलर और आचार्य प्रफुल्लचंद्र राय उन्हें रसायनशास्त्र पढ़ाया करते थे। ब्रह्मचारी आचार्य राय से बहुत प्रभावित थे।

ब्रह्मचारी ने अपना मेडिकल करियर भी समान परिश्रम के साथ जारी रखा। सन् 1900 में कलकत्ता विश्वविद्यालय के एम.बी. की परीक्षा में ब्रह्मचारी औषधि और शल्यचिकित्सा में प्रथम स्थान पर रहे जिसके लिए उन्हें मैकलियोड पदक से सम्मानित किया गया। सन् 1902 में उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय की एम.डी. डिग्री प्राप्त की। उन दिनों में विशेष योग्यता पाना बहुत मुश्किल था। उन्होंने शरीरक्रिया विज्ञान में कलकत्ता विश्वविद्यालय से पी-एच.डी। की डिग्री प्राप्त की। उनका शोधप्रबंध रूधिरलयन (Haemolysis) पर था। ब्रह्मचारी ने प्रांतीय चिकित्सा सेवा में शामिल होकर चिकित्सक सर गेराल्ड बमफोर्ड (Sir Gerald Bumford) के साथ काम किया। ब्रह्मचारी की अनुसंधान के लिए तीव्र इच्छा और कर्तव्यों के बारे में उनकी प्रबल भावना को देखकर सर बमफोर्ड अत्यधिक प्रभावित हुए। नवंबर 1901 में ब्रह्मचारी को ढाका मेडिकल स्कूल में शरीरक्रिया विज्ञान (Physiology) के शिक्षक के रूप में नियुक्त किया गया जहां उन्होंने करीब चार साल बिताए। वर्ष 1905 में वापस कोलकाता आने के बाद ब्रह्मचारी कैंपबेल मेडिकल स्कूल में भेषज विज्ञान (Pharmacology) के शिक्षक के रूप में काम करने लगे जहाँ उन्होंने बीस साल बिताए।

कालाजार रोग बच्चों और वयस्कों दोनों में समान रूप से पाया जाने वाला रोगाणु संक्रमण होता है। इस पर किया गया अनुसंधान ब्रह्मचारी का सबसे उत्कृष्ट योगदान था। सन् 1903 में सर विलियम लीशमैन (Sir William Leishman) और चार्ल्स डोनोवान (Charles Donovan) ने कालाजार बीमारी के लक्षण चिह्नित किये थे। उनके नाम पर कालाजार को अकसर लीशमैन-डोनोवान संक्रमण के रूप में भी जाना जाता है। कालाजार दक्षिण एशियाई और भूमध्य देशों में होने वाली एक संक्रामक बीमारी है जो प्रोटोजोआ परजीवी लीशमैनिया डोनोवानी (Leishmania donovani) से पैदा होता है। यह रोग सैंडफ्लाई (Sandfly) नामक मक्खी के द्वारा प्रसारित होता है। अनियमित बुखार, बढ़ा हुआ प्लीहा और यकृत, रक्ताल्पता, त्वचा पर व्रण (स्किन अल्सर), आदि इस बीमारी के लक्षण होते है। इसमें रोगी की त्वचा काली पड़ जाती है। हाथ या पैर में रोग होने पर वह बेहद विरूपित नज़र आता है। चेहरे पर संक्रमण होने पर वह डरावना तथा बदसूरत हो जाता है। अगर रोगी इस बीमारी से बच भी गया तो वह जीवन भर के लिए कालाजार के बदनुमा धब्बों से दागदार हो जाता था। यानी यह बीमारी जीवन भर के लिए स्थायी चिह्न छोड़ जाती थी। कालाजार की बीमारी किस कदर रोगी को अभिशप्त कर देती थी, यह साथ में संलग्न चित्रों से स्पष्ट है। भारत के पूर्वोत्तर राज्यों जैसे, असम, बंगाल, बिहार इससे सर्वाधिक पीड़ित इलाके थे। आज भी अनुमान है कि दुनिया भर के 98 देशों में करीब 40 लाख से लेकर 1 करोड़ बीस लाख लोग कालाजार बीमारी से पीड़ित हैं। हर साल इसके 20 लाख नए मामले आते हैं। विश्व भर में कालाजार से तकरीबन 20 हजार से लेकर 50 हजार मौतें हर साल दर्ज की जाती हैं। एशिया अफ्रीका, मध्य तथा दक्षिण अमेरिकी देशों में करीब 20 करोड़ लोग ऐसे इलाकों में रहते हैं जहां कालाजार का संक्रमण होने की संभावना हमेशा बनी रहती है। कालाजार से बचने के लिए सैंडफ्लाई को पनपने नहीं देना चाहिए। इसके लिए समुचित रसायनों के साथ आवासीय बस्तियों में समय-समय पर धूमन (Fumigation) करना चाहिए। बरसात के दिनों में जब संक्रमण का खतरा ज्यादा रहता है उस समय धुंआ के साथ रसायनों का छिड़काव जरूरी होता है।

सन् 1913 में ब्राजील के एक डॉक्टर ने दक्षिण अमेरिकी में फैले कालाजार, टार्टर इमिटिक (एन्टीमोनिल टारट्रेट का पोटेशियम क्षार) के अंतशिरीय प्रबन्धन द्वारा ठीक करने की सूचना दी। फिर 1915 में सिसिली के क्रिस्टीना और कोर्टिना ने भी शिशुओं में कालाजार के उपचार में टारट्रेट इमिटिक के सफल उपयोग के परिणाम प्राप्त किये। सन् 1915 में कलकत्ता में रोजर्स को भी टार्टर इमिटिक के अंतश्शिरीय (Intravenous) उपयोग के द्वारा अनुकूल परिणाम प्राप्त हुए। हालांकि, चिकित्सकों को जल्दी ही यह पता चला कि नसों के द्वारा टार्टर इमिटिक के लंबे समय तक इस्तेमाल करने से रोगी को गंभीर नुकसान होता है। फिर ब्रह्मचारी ने टार्टर इमिटिक के परिणामों को बेहतर बनाने की दिशा में शोध

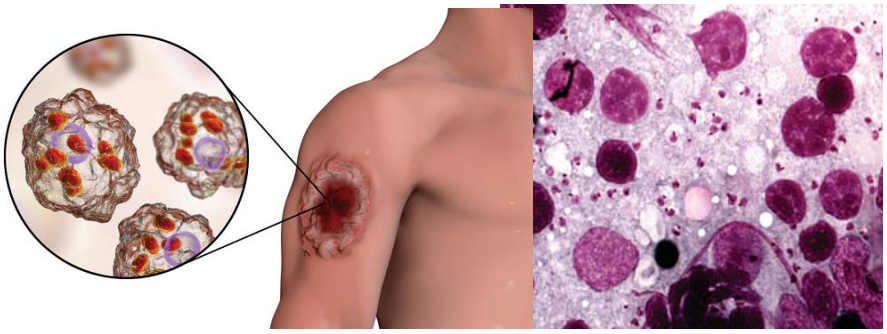

करने का फैसला किया जिसके लिए उन्होंने पोटेशियम क्षार के बजाय एन्टीमोनिल टारट्रेट के सोडियम क्षार का उपयोग किया। ऐसा करके पोटेशियम की अवसादक प्रक्रिया को रोककर और कुछ बेहतर परिणाम प्राप्त करने के बारे में ब्रह्मचारी ने सोचा। उन्हें इससे बेहतर परिणाम प्राप्त हुए और काफी सालों तक सोडियम एन्टीमोनिल टारट्रेट का इस्तेमाल किया गया। लेकिन बाद में यह पाया गया कि सोडियम क्षार का लंबे समय तक इस्तेमाल भी नुकसानदायक होता है। इसके बाद डॉ. ब्रह्मचारी ने धातु एन्टीमनी (Antimony) का उपयोग पहले सूक्ष्म पाउडर के रूप में, और फिर कोलाइडी एन्टीमनी के रूप में इस्तेमाल शुरू किया। डॉ. ब्रह्मचारी द्वारा आजमाये गये एन्टीमनी के दोनों तरीकों से बेहद अच्छे नतीजे मिले।

सन् 1919 के अंत में इसी रोग के उपचार में आगे अनुसंधान जारी रखने के लिए ब्रह्मचारी को इंडियन रिसर्च फंड एसोसिएशन द्वारा एक अनुदान प्राप्त हुआ। उन्होंने कैम्पबेल अस्पताल में एक छोटे से कमरे में अपने शोधकार्य को अंजाम दिया। वहाँ पर उन्हें उन दिनों गैस बर्नर, पानी के नल, या बिजली के बल्ब जैसी बुनियादी सुविधाएं भी नहीं थी। वे मिट्टी के तेल के दीये से अपना काम चलाते थे। इन्हीं परिस्थितियों में काम करते हुए ब्रह्मचारी ने कालाजार के खिलाफ एक अद्भुत गुणकारी पदार्थ, यूरिया स्टिबामीन नाम यौगिक की खोज की। यह पैरा-एमीनो-फेनिल स्टीबनिक अम्ल का यूरिया क्षार (Uric salt of Para-amino-phenyl stibenic acid) था। यूरिया स्टिबामीन, कालाजार के इलाज में एक बहुत बड़ी सफलता थी। उनकी खोज ने पूर्वी भारत में लाखों रोगियों की प्राणरक्षा की। आसाम में कई गाँवों तो इस बीमारी से पूरी तरह खाली हो गये थे क्योंकि वहाँ कोई भी जीवित नहीं बचा था। सन् 1932 में, भारत सरकार द्वारा नियुक्त किए गए कालाजार आयोग के निदेशक कर्नल एच.ई. शॉर्ट ने कहाः "हमने पाया है कि यूरिया स्टिबामीन उत्कृष्ट रूप से एक सुरक्षित और विश्वसनीय दवा है। सात बरसों में हमने इससे कालाजार के हजारों मरीजों का इलाज किया है और उपचार केन्द्रों में हजारों से भी अधिक लोगों का इलाज होते हुए देखा है"। आज भारत और दुनिया के अन्य भागों में कालाजार की बीमारी कम हो गयी है। कालाजार अब सिर्फ दूरदराज के इलाकों तथा गरीब तबकों में पाया जाता है जहां प्रायः लोगों में सैडफ्लाई से बचाव के तरीकों के बारे में न तो समुचित साधन हैं, और न ही पर्याप्त जागरूकता।

ब्रह्मचारी मानवतावादी और सांस्कृतिक गतिविधियों में गहरी रुचि रखते थे। उन्होंने कलकत्ता के एक ब्लड बैंक के गठन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। वे बंगाल के ब्लड ट्रांसफ्यूजन सर्विस के अध्यक्ष भी रहे। वे सेंट जॉन एम्बुलेंस एसोसिएशन के बंगाल शाखा के उपाध्यक्ष तथा उसके अध्यक्ष भी थे। डॉ। ब्रह्मचारी भारतीय रेडक्रॉस सोसाइटी, बंगाल शाखा के प्रबंध निकाय के अध्यक्ष थे। वास्तव में ब्रह्मचारी अध्यक्ष बनने वाले पहले भारतीय थे। वे बंगाल की स्वच्छता समिति के एक सदस्य थे। वे भारतीय संग्रहालय के न्यासी समिति के उपाध्यक्ष थे। वे एक दानशील व्यक्ति थे। उन्होंने उदार मन से बहुत दान किया था। उन्होंने संस्थाओं तथा संगठनों को यथासंभव मुक्तहस्त दान दिया। उनके द्वारा दान प्राप्त कुछ संस्थाओं में इंडियन रेडक्रॉस सोसायटी, कलकत्ता ब्लड बैंक, कलकत्ता विश्वविद्यालय, सेन्ट्रल ग्लास एण्ड सिरैमिक रिसर्च इंस्टीट्यूट, फिजियो-लॉजिकल सोसायटी आफ इंडिया, कलकत्ता मेडिकल कॉलेज, इंडियन एसोसिएशन फॉर कल्टीवेशन आफ साइंस, इंडियन साइंस कॉंग्रेस, और बंगाल उद्योग समिति, का नामोल्लेख किया जा सकता है।

भारत में उस समय शायद ही कोई ऐसा अस्पताल रहा होगा जिसने उनकी दवा यूरिया स्टिबामीन से मुफ्त लाभ न प्राप्त किया हो। उन्होंने यूरिया स्टिबामीन दवा को उसके लागत मूल्य में सरकार को बेच दिया था। उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय में कई पुरस्कार, छात्रवृत्ति और पदक के लिए प्रावधान कर रखे थे। बहुत से लोगों को ये पता नहीं है कि ब्रह्मचारी के उदारपूर्वक योगदान की वजह से ही साइंस एण्ड कल्चर (Science & Culture) पत्रिका शुरू हो सकी है। उन्हें विभिन्न चिकित्सा और वैज्ञानिक संस्थाओं द्वारा सम्मानित किया गया था। ब्रह्मचारी ने प्राप्त किये हुए विभिन्न सम्मानों में से कुछ है; कलकत्ता विश्वविद्यालय का ग्रिफिथ मेमोरियल पुरस्कार, ट्रॉपिकल मेडिसिन एण्ड हायजीन स्कूल, का मिंटो पदक, बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी का सर विलियम जोन्स पदक, इत्यादि।

डॉ. ब्रह्मचारी स्वभाव से परोपकारी इंसान थे। उनके सेवाभावी कार्य के लिए ब्रितानी सरकार ने 1924 में डॉ. ब्रह्मचारी को 'रायबहादुर' के खिताब से नवाजा था। सन् 1934 में भारत के गवर्नर जनरल लॉर्ड लिटन द्वारा उन्हें 'कैसर-ए-हिन्द' स्वर्ण पदक से सम्मानित किया गया। उसी वर्ष उन्हें ब्रिटिश सरकार 'नाइटहुड़' की उपाधि भी दी गई। वे इंडियन एसोसिएशन फॉर कल्टीवेशन ऑफ साइंस, कलकत्ता के अध्यक्ष, अंतर्राष्ट्रीय सूक्ष्म जीवविज्ञानी सम्मेलन, पेरिस, के भारतीय समिति के अध्यक्ष, इंडियन फिजियोलॉजिकल सोसायटी के अध्यक्ष, भारतीय विज्ञान समाचार समिति, कलकत्ता के अध्यक्ष, भारतीय प्रादेशिक चिकित्सा सेवा संध के अध्यक्ष रहे। डॉ. ब्रह्मचारी लंदन स्थित रॉयल सोसायटी ऑफ मेडीसिन के फैलो, तथा भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी, के भी फैलो, थे। वे इंदौर में 1936 में आयोजित भारतीय विज्ञान कांग्रेस के 23वें सत्र के अध्यक्ष थे। भारत के इस महान चिकित्सक, शोधकर्ता तथा आविष्कारक का 6 फ़रवरी 1946 को निधन हो गया। उनके कार्यों ने चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में युगान्तर प्रस्तुत किया। कोरोना के वर्तमान संकट काल में ऐसे महान भारतीय विज्ञानी का स्मरण हो आना स्वाभाविक है जिसने अपने एकल प्रयास से धरती के विस्तृत भू-भाग पर फैली एक भयानक बीमारी का इलाज खोजने में अविस्मरणीय योगदान दिया।

vigyan.lekhak@gmail.com

❑❑❑